DOI: 10.51220/hjssh.v5i1.15
Himalayan J. Soc.Sci. & Humanities Vol- 5 pp.123-130, December, 2010, ISSN. 0975 - 9891

सल्तनतकालीन इतिहास लेखकों की कृतियों में निहित आत्मनिष्ठ एवं अभिलाशाजन्य तत्वों का परीक्षण : एक समालोचना

प्रवेश कुमार
इतिहास विभाग, गोचर महाविद्यालय, रामपुर मनिहारन, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश

Received: 5-12-2010 **Revised: 25-12-2010** **Accepted: 31-12-2010**

ABSTRACT

समकालीन इतिहास लेखकों की कृतियों एवं उनके अनुवादों की उपलब्धता ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन को निःसन्देह सहज बना दिया है, परन्तु उन समकालीन लेखकों के ग्रन्थों का दोहन करते समय अनेक परवर्ती (आधुनिक लेखकों) ने इस बात पर बहुत कम ध्यान दिया है कि वह समकालीन इतिहास लेखकों के जिन ग्रन्थों को मूल स्रोत के रूप में उपयोग में ला रहे हैं, वह वास्तव में सैद्धान्तिक कृतियाँ हैं या वस्तुतः घटित घटनाओं और वास्तविक पारिस्थितियों का विवरण? उन समकालीन इतिहास लेखकों की कृतियों में उनके आत्मनिश्ठ तत्व कितनी गहराई तक समाहित हैं और उन्होंने जो लिखा है, वह वास्तव में घटित हुआ भी है या फिर उन्होंने वह लिखा है, जिसे वह चाहते थे कि घटित हो? यह प्रश्न भी विचारणीय हैं कि यदि उन लेखकों ने अपने नायकों की प्रशंसा में लेखन कार्य किया है, तो उन्हें क्या पारितोशक मिले और यदि उन्होंने आलोचना की है, तो उस आलोचना में अंतर्निष्ठ कारण क्या थे? प्रस्तुत आलेख में इसी विज़य का अध्ययन-विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के वस्तुतः अध्ययन के लिए आवश्यक है कि समकालीन लेखकों द्वारा इतिहास में समायोजित उनके अपने अभिलाशाजन्य (सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही) तत्वों और वास्तविक तथ्यों के बीच अन्तर को पहचाना जाये। अधिकांशतः आज भी मध्यकालीन इतिहास के समकालीन लेखकों की कृतियों की विवेचना और व्याख्या की परिपाटी वही है, जो लगभग दो पीढ़ियों पहले थी। आज भी मध्यकालीन इतिहास विशय के विद्यार्थियों को समकालीन इतिहास लेखकों के वही अपरिश्कृत उद्धारण रटे हुए हैं या रटाये जा रहे हैं, जो मध्यकालीन इतिहास लेखन की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से की गई व्याख्या से पूर्व रटे रहते थे। यह स्थिति असहनीय न होती यदि विद्यार्थियों द्वारा इसका उपयोग केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने तक ही सीमित रहता, परन्तु ऐसा नहीं है। इस कमी ने उन्हें निष्पक्ष मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति से वंचित कर दिया है। यह कमी उनके सर्वांगीण विकास में बाधक हो सकती है और नज़रिये को संकुचित बना सकती है।

वास्तव में इतिहास की अवैज्ञानिक व्याख्या घटिया किस्म का इतिहास है। इतिहास का अध्ययन एक अग्रगामी शास्त्रानुशासन है, जिसके लिए विश्लेषण की नयी तकनीकों और पद्धतियों का उपयोग आवश्यक है। सल्तनतकालीन इतिहास लेखन का सतर्कता और खुले दिमाग से अध्ययन करने पर समकालीन लेखकों द्वारा उनकी कृतियों में आत्मनिष्ठ और अभिलाशाजन्य तत्वों के समावेश को पहचाना जा सकता है, उनका परीक्षण किया जा सकता है। इस विषय की समालोचना के क्रम में सर्वप्रथम **''ताज़-उल-मआसिर''** नामक समकालीन ग्रन्थ के लेखक सद्रउद्दीन हसन निज़ामी को लें। इस लेखक ने सन् 1191 से 1229 तक

©SHARAD

घटनाओं का वर्णन अपनी कृति में किया है। यह (1191-1229) कालावधि उत्तर भारत में राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों के कारण महत्त्वपूर्ण थी। विशेषकर उन उलेमाओं (धर्माचार्यो एंव बुद्धिजीवियों) के लिए, जो तुर्को की उत्तर भारत विजय को राजनीतिक-सामरिक घटनाक्रम की दृष्टि से न देखकर इस्लाम की विजय के रूप में देख रहे थे।

कतिपय समकालीन लेखकों, बुद्धिजीवियों? ने जो महत्वाकांक्षी थे, इस अवसर का लाभ उठाकर स्वयं को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उन्होंने तुर्क विजेताओं एंव शासकों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से उनकी उपलब्धियों को बढ़ा-चढ़ा कर इतिहास के रूप में लिपिबद्ध करना आरम्भ कर दिया। विवेचनागत लेखक हसन निज़ामी भी ऐसे ही जोशीले और महत्वकांक्षी लेखक-बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधि था। इसी कारण वह मौहम्मद गौरी तथा कुतुबुद्दीन ऐबक को इस्लाम के रक्षक-प्रचारक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता था। वह अपनी कृति में सर्वत्र तुर्की विजेताओं की प्रशंसा करता हुआ दिखाई देता है। उनकी विजयों का वर्णन वह इतने उत्साह से करता है, जैसे वे उसकी स्वयं की विजयें हों।[1] इसके विपरीत जिन भारतीय रायों, राजाओं ने गौरी तथा ऐबक का प्रतिरोध किया, उनके लिए वह अनुचित शब्दों का प्रयोग करता है और उन राजाओं के प्रतिरोध की तीव्रता, आत्मरक्षा के प्रयासों आदि का उल्लेख दबी जुबान में करता है। उदाहरण के लिए वह कोल के निवासियों द्वारा तुर्को के दीर्घकालीन संघर्श को **''शेर और लोमड़ी की लड़ाई''** बताता है।[2] जबकि जिन भारतीय राजाओं ने उसके नायकों की अधीनता स्वीकार कर ली है, वह उनकी बुद्धिमता की प्रशंसा करता है। उसके लेखन में उसकी यह अभिलाशा स्पष्ट झलकती है कि भारतीय राजा बिना किसी प्रतिरोध के उसके नायकों के सम्मुख समर्पण कर दें।

इसी प्रकार यह लेखक ताराइन के प्रथम युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के हाथों हुई मौहम्मद गौरी की पराजय का कोई उल्लेख नहीं करता है, क्योंकि वह अपने नायक की पराजय चाहता ही नहीं था। वह युद्ध में मृत तथा बन्दी बनाये गये गैर मुस्लिमों की संख्या का तो उल्लेख करता है, परन्तु कितने तुर्क सैनिक मारे गये और कितने बन्दी बनाये गये, यह आंकड़े नहीं देता है। यद्यपि वह प्रत्येक युद्ध को जिहाद (धर्मयुद्ध) के रूप में चित्रित करता है, अपने नायकों को इस्लाम के रक्षकों के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता है, उन्हें बहुदेवतावादियों के विरोधियों के रूप में प्रस्थापित करना चाहता था,[3] परन्तु उसकी पोल उस समय खुल जाती है, जब वह ऐबक तथा इल्तुतमिश द्वारा नवविजित इलाकों में नियुक्त प्रशासकों को जनता के साथ समानता, उदारता और दयालुता के निर्देश दिये जाने का उल्लेख करता है और लिखता है कि-(1) सुल्तान ने स्पष्ट निर्देश दिये कि जिहाद की घोषणा तभी की जाये, जब वह वास्तव में खुदा के लिए सही मायने में धर्मयुद्ध हो, (2)राज्य के गरीब अमीर, छोटे-बड़े सभी के प्रति बिना भेदभाव के उदारता तथा दयालुता का व्यवहार करना चाहिए, जिससे राज्य में सुख-स्मृद्धि बढ़े,(3)पूर्वाग्रह के आधार पर किसी के ऊपर अत्याचार नहीं करना चाहिए और विरोधियों का विश्वास प्राप्त कर उन्हें अपने पक्ष में करने का प्रयास करना चाहिए, (4) किसानों, रय्यत और व्यापारियों को सभी सम्भव सहायता एवं सुविधायें दी जायें।[4]

ऐबक एंव इल्तुतमिश द्वारा नवविजित भू-प्रदेशों में नियुक्त अपने प्रशासकों को दिये गये उक्त निर्देशों के अध्ययन-विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि इन सुल्तानों ने प्रत्येक युद्ध को धर्म युद्ध घोषित नहीं किया, जैसा कि हसन निज़ामी बार-बार आश्वस्त करना चाहता है। उक्त निर्देशों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि

उक्त सुल्तान केवल किसी धार्म विशेष के अनुयायियों के ही हितैशी नहीं थे जबकि हसन निज़ामी उनकी ऐसी छवि बनाने का प्रयास करता है। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह दोनों सुल्तान किसानों की खुशहाली चाहते थे और सल्तनत के उस आरम्भिक दौर में बहुसंख्यक गैर मुस्लिम ही अधिकांशत: किसान थे। इन्हीं किसानों के उत्पादों एवं इनसे प्राप्त राजस्व के बल पर ही वह अपनी सल्तनत का आर्थिक ढ़ाचा खड़ा कर सकते थे।[5] वह सुल्तान इतने मुर्ख नहीं थे कि '**सोने का अण्डा देने वाली बत्तख**' को ही मार डालते। हसन निज़ामी जैसे दरबारी लेखक स्वयं भी इन किसानों द्वारा भुगतान किये गये राजस्व से ही अपना 'मेहनताना' प्राप्त करते थे।

समकालीन इतिहास लेखकों में ''**तबकात-ए-नासिरी**'' का लेखक मिन्हाज-उस-सिराज भी एक राजकीय कर्मचारी था। उसने सन् 1228 से 1260 तक की घटनाओं को अपनी कृति में अंकित किया है। यद्यपि समकालीन सैनिक इतिहास के लिए उसकी कृति अत्यन्त उपयागी है,[6] परन्तु एक राजकीय कर्मचारी के रूप में वह भी वही लिखने के लिए बाध्य था, जो उसके आक़ाओं की उपलब्धियों को इंगित करे। लेखक ने बड़ी चतुराई से स्यवं को उन घटनाओं एवं विवरणों की निष्पक्ष व्याख्या से यह कह कर बचा लिया है कि ''ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी, इसलिए ऐसा ही हुआ''[7] मिन्हाज ने घटनाओं को ईश्वरीय इच्छाओं तथा नियति के अधीन बता कर उन तथ्यों पर पर्दा डालने का प्रयास किया है, जिन्हें वह बख़ूबी जानता था और उनकी व्याख्या कर सकता था। उदाहरण के लिए वह भी तराइन के प्रथम युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के हाथों हुई गौरी की पराजय पर मौन है। वह कुतुबुदीन ऐबक की मृत्यु के पश्चात सिंहासनारूढ़ हुए आरामशाह को इल्ततुमिश द्वारा पदच्युत करने की घटना का उल्लेख न करके केवल यह लिखता है कि ''क्योंकि खुदा ने मनुष्यों का भाग्य लिखते समेय निश्चित कर दिया था कि हिन्दुस्तान का राज्य इल्ततुमिश तथा उसके वंशजों के अधिकार में रहे, इसलिए उसने उसे एक दास से सुल्तान बना दिया।''[8] इसी प्रकार वह रज़िया के पतन में अमीर वर्ग के कुचक्रों की स्पष्ट व्याख्या न करके रज़िया के पतन के लिए उसके स्त्री होने को ही दोषी ठहराता है।[9]

वास्तव में मिन्हाज के लेखन को मुस्लिम इतिहास का प्रशंसात्मक और विवेचनाहीन आलेख ही माना जायेगा, जो परस्पर विरोधी कथनों से भरा हुआ है।[10] सम्भवत: अपने लेखन की इस कमी को मिन्हाज स्वयं भी जानता था। इसीलिए उसने अपने ग्रन्थ की भूमिका में लिखा भी है कि ''यदि इसमें (तबकात-ए-नासिरी में) किसी को त्रुटि दिखाई दे, तो वह इसके लिए लेखक को क्षमा करे, क्योंकि लेखक ने जो कुछ पिछले इतिहासों मे पढ़ा उसे संक्षेप में लिख दिया और जो कुछ स्वयं देखा उसका भी उल्लेख कर दिया।''[10] मिन्हाज की इस स्वीकारोक्ति से उन अध्येताओं को सचेत हो जाना चाहिए, जो मिन्हाज के विवरणों को पूर्णतया सत्य मान लेने की गलती कर सकते हैं।

लगभग आधी शाताब्दी (1272-1325) तक दिल्ली दरबार और राजपरिवार से जुड़े रहने वाले समकालीन लेखक, कवि एवं संगीतकार अमीर ख़ुसरो को उसके भारत प्रेम एंव समन्वयवादी दृष्टिकोण के लिए भारत का प्रथम राष्ट्रीय कवि कहा जाता है।[11] लेकिन ख़ुसरो भी वही लिखने को बाध्य था, जो उसके आश्रयदाताओं को पसन्द होता, क्योंकि ख़ुसरो भी जीविका के लिए दरबार से मिलने वाले मेहनतानें और पारितोशिकों पर निर्भर था। यद्यपि स्वयं वह अपनी एक कृति में लिखता है कि वह असत्य बात लिखना चाहता

था (सुल्तान जलालउद्दीन ख़िल्जी को प्रसन्न करने के लिए), परन्तु उसकी कलम रुक गई। वह स्वीकार करता है कि वह असत्य बात उसके काव्य को सुन्दर बना सकती थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया।[12] परन्तु सत्य के प्रति खुसरो की यह आत्मप्रशंसा उसे उस समय शक के घेरे में खड़ा कर देती है, जब वह अलाउद्दीन ख़िल्जी द्वारा अपने चाचा सुल्तान जलालउद्दीन की हत्या का उल्लेख नहीं करता है, और मलिक काफूर के दुर्गुणों पर पर्दा डालने का प्रयास करता है, क्योंकि अलाउद्दीन मलिक काफूर की आलोचना को पसन्द नहीं करता। ऐसा करके खुसरो अपने इस नये आश्रयदाता को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था।[13]

खुसरो मंगोल आक्रमणकारियों कुतुलुग ख़्वाजा, सल्दी और तरगी द्वारा सुल्तान अलाउद्दीन ख़िल्जी की प्रतिज्ठा को पहुँचाई गई क्षति का भी उल्लेख नहीं करता है, क्योंकि इससे भी सुल्तान अप्रसन्न हो सकता था। खुसरो किसी भी दशा में सुल्तान को अप्रसन्न करने का जोखिम उठाने को तैयार नहीं था, क्योंकि खुसरो पद तथा राजसी सुख-सुविधाओं से वंचित नहीं होना चाहता था। वास्तव में वह जितना साहित्य रचना के लिए आतुर रहता था, उतना ही धन प्राप्ति के लिए भी। अपने दरबारी जीवन के अति आरम्भ में ही उसने अपने आश्रयदाता मलिक छज्जू के विरोधी बुगरा खाँ से उपहारस्वरूप चांदी से भरी तश्तरी स्वीकार करके यह दिखा दिया था कि उसे वही आश्रयदाता पसन्द होगा, जो उसे अधिक धन देगा।[14] उसके इस लालची व्यवहार के लिए मलिक छज्जू ने उसे अपने से अलग कर दिया था। समकालीन लेखक बरनी ने भी इस बात की पुष्टि की है कि अमीर खुसरो ऐसे आश्रयदाता की कामना करता था, जो उसे सोनें चांदी में डुबाये रखे।[15]

खुसरो का प्रयास रहता था कि वह अपने आश्रयदाता (सुल्तानों) का गुणगान करके उनके पक्ष में जनमत तैयार करके उनका नाम रौशन करता रहे। इसके लिए वह ज़ोर देकर अधिाक से अधिाक मेहनताना भी वसूल करता था।[16] मौहम्मद हबीब की यह टिपण्णी खुसरो के चरित्र और अभिलाशाओं पर व्यापक प्रकाश डालती है कि ''लगभग आधी शताब्दी तक खुसरो की तारीफ़ करने वाली आँखे अपने सामने से गुज़रने वाले रंग-बिरंगे बुलबुलों (सुल्तानों) को देखती रहीं। खुसरो ने दिल खोलकर उन पर प्रशंसा भरे शब्दों की बौछार की, पर जैसे ही बुलबुला फट जाता था (वह सुल्तान मर जाता था) खुसरो उसे भुला देता था। कोई न कोई नया सितारा (सुल्तान) आकाश में चमकने लगता था और खुसरो उस नये सितारे की रोशनी में फिर से अपना मधुर काव्य लिखने बैठ जाते थे।''[17] इसीलिए पीटर हार्डी ने अमीर खुसरो को इतिहास का विवेचनात्मक लेखक नहीं, बल्कि केवल कवि माना है, जिसकी अधिकांश रचनायें उसकी अपनी कल्पना तथा अभिलाशाओं पर केन्द्रित थीं।[18]

अमीर खुसरो जैसे प्रशंसकों, जिन्हें एक क़सीदे की रचना के लिए 5,00000 टंका तक पारितोशक के रूप में प्राप्त होते थे, के साथ ही अब्दुल मलिक एसामी जैसा लेखक भी हुआ जिसने अपनी पूरी ताक़त सुल्तान की आलोचना में लगा दी और जीवन पर्यन्त सुल्तान की आलोचना करता रहा। एसामी के पूर्वज बलबन के समय से ही कई बड़े-बड़े गांवों के स्वामी थे, परन्तु ग्यासउद्दीन तुग़लक के सत्तारूढ़ होने पर एसामी के परिवार को उन गांवों से वंचित कर दिया गया। निःसन्देह इससे बालक एसामी का मन सुल्तान की ओर खट्टा हो गया। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकरी मौहम्मद बिन तुग़लक के राजधानी परिवर्तन के समय 16 वर्षीय एसामी को अपने 90 वर्षीय दादा के साथ दिल्ली से दौलताबाद भेजा गया। मार्ग में ही उसके दादा

की मृत्यु हो गई। एसामी के पिता की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। इस घटना ने असहाय एसामी को समकालीन सुल्तान मौहम्मद बिन तुग़लक का कटटर विरोधी और आलोचक बना दिया।[19]

एसामी सुल्तान मौहम्मद बिन तुग़लक के विरोधी बहमनी राज्य के संस्थापक अलाउद्दीन बहमनशाह के दरबार में चला गया। वहीं रह कर उसने अपनी प्रतिशोधात्मक कृति **''फुतूहउस्सलातीन''** की रचना की। उसने केवल पाँच माह (दिसम्बर1349 से मई 1350 के बीच) में अपने इस ग्रन्थ को पूरा किया। उसने अपने ग्रन्थ की प्रतियाँ उन सभी प्रान्तीय शासकों को भेजीं, जो मौहम्मद बिन तुग़लक के विरोधी थे।[20] एसामी से, जो समकालीन सुल्तान मौहम्मद बिन तुग़लक का घोर विरोधी था, यह आशा करना ही व्यर्थ है कि उसका इतिहास लेखन वास्तविक घटनाओं पर आधारित रहा होगा। एसामी ने प्रतिशोधवश मौहम्मद बिन तुग़लक के सम्बन्ध में अनेक असत्य बातें लिखी हैं और सुल्तान के विरुद्ध होने वाले प्रत्येक विद्रोह को अपना नैतिक समर्थन दिया है।[21]

एसामी सुल्तान मौहम्मद बिन तुग़लक को असफल होता हुआ देखना चाहता था और चाहता था। वह चाहता था कि जनता उस सुल्तान को नकार दे। एसामी की हार्दिक इच्छा थी कि सुल्तान अपनी किसी भी योजना में सफल सिद्ध न होने पाये और अब तक के सुल्तानों में सबसे बुरा शासक सिद्ध हो। ऐसी स्थिति में उसका इतिहास लेखन जो पूरी तरह से पूर्वाग्रह से प्रभावी था, कैसे विश्वसनीय मान लिया जाये? परन्तु जो विद्वान मौहम्मद बिन तुग़लक को एक रक्तपिपासु और पागल शासक सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध रहे है और हैं, वह सामान्यत: एसामी के वक्तव्यों को ही अपना आधार बनाते है। एक निष्पक्ष और सचेत अध्येता को यह याद रखना चाहिए कि एसामी सुल्तान मौहम्मद बिन तुग़लक से असंतुष्ट लोगों का प्रतिनिधि है और उसका लेखन अभिलाशाजन्य प्रतिशोध का फल है। वास्तव में एसामी मौहम्मद बिन तुग़लक का समकालीन होते हुए भी उन घटनाओं का चश्मदीद गवाह नहीं है, जो उसने लिखी हैं, क्योंकि उसने अपना लेखन कार्य मौहम्मद बिन तुग़लक के राज्य से सैकड़ों मील दूर बहमनी राज्य में बैठ कर किया था।

सल्तनतकालीन इतिहास के समकालीन लेखकों में ज़ियाउद्दीन बरनी यद्यपि दीर्घकालीन इतिहास लिखने के लिए प्रसिद्ध है और उसने बलबन से फ़िरोज तुग़लक के शासन काल के छठे वर्ष तक (1265-1357) की घटनाओं को लिखा है, परन्तु उसने अनेक घटनाओं की व्याख्या धार्मिक दृष्टिकोण से की है। उसकी यह निष्ठा कि ''इतिहास और हदीस जुड़वाँ है'' इतिहास के प्रति उसके धार्मिक दृष्टिकोण को स्वत: ही स्पष्ट कर देती है।[22] उसका यह धार्मिक दृष्टिकोण उसकी कृति **''फ़तवा-ए-जहाँदारी''** अर्थात ''आर्दश शासन सिद्धान्त'' में स्पष्टत: परिलक्षित होता है। वह इस्लामी सिद्धान्तों को समसामयिक राजव्यवस्था में लागू कराने के लिए आतुर दिखाई देता है। उसकी अभिलाषा थी कि उसने शासन संचालन के लिए फ़तवाये जहाँदारी में जिन आर्दशों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वह सिद्धान्त व्यवहार में लाये जायें।

वास्तव में बरनी ने बलबन तथा अलाउद्दीन द्वारा जिन सिद्धान्तों का प्रचार करने की बात कही है, वह सिद्धान्त और आर्दश स्वयं बरनी के हैं, जिन्हें उसने इन लोगो के मुँह से कहलाने का प्रयास किया है।[23] बरनी द्वारा लिखित इतिहास नस्लवाद से भी प्रभावित है। वह उच्चवंशीय नस्लवाद के प्रभुत्व का समर्थक था और निम्न वर्गीय लोगों के उत्थान को सहन नहीं कर पर रहा था। निम्नवर्गीय लोगों को दबाये रखने की उसकी

अभिलाषा इतनी प्रबल थी कि वह ख़ुसरो ख़ाँ (ख़ुसरोशाह सन् 1320) को सुल्तान बनने के योग्य नहीं मानता था, क्योंकि ख़ुसरोशाह एक निम्नवर्गीय कबीले से सम्बन्धित था।[24]

बरनी निम्नवर्गीय लोगों को न तो शासन में कोई पद दिये जाने का समर्थक था और न ही वह चाहता था कि कोई निम्नवर्गीय व्यक्ति सुल्तान द्वारा पुरस्कृत किया जाये। उसकी धारणा थी कि इतिहास का अध्ययन केवल वही व्यक्ति कर सकता है,जो राजनीति तथा धार्म के क्षेत्र में सम्पन्न हो। उसका मानना था कि इतिहास के अध्ययन का अधिकार नीच और दरिद्र व्यक्तियों को नहीं होना चाहिए।[25] यद्यपि एक ओर वह उपदेश देता है कि एक इतिहासकार को अपने लेखन में स्वतंत्र और आत्मिक दृष्टि से निर्भीक होना चाहिए, इतिहास लेखक को अपनी समालोचना में न्याययुक्त तथा निष्पक्ष होना चाहिए,[26] परन्तु दूसरी ओर वह लिखता है कि यदि इतिहास लेखक को अपने समय के शासकों के सम्बन्ध में किसी बात को लिखने में संकोच हो तो (स्पष्ट न लिखकर) संकेत कर देना चाहिए जिससे बुद्धिमान लोग उसका आशय समझ जायें।[27]

एक ओर जहाँ बरनी चापलूसी से बचने की बात करता है, वहीं वह सुल्तान फ़िरोज़ तुग़लक की चापलूसी करने और उसका सानिध्य प्राप्त करने के लिए बैचेन दिखाई देता है। "**तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही**" की रचना करके वह समकालीन सुल्तान फ़िरोज़ तुग़लक को प्रसन्न करना चाहता था। उसकी अभिलाषा थी कि उसकी वह रचना सुलतान तक पहुँच जाये और उसने जो परिश्रम किया है वह व्यर्थ न जाये,[28] अर्थात उसे धन और पद प्राप्त हो जायें। बरनी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में स्वयं यह बात स्वीकार करता है कि उसने सुल्तान मौहम्मद बिन तुग़लक का सलाहकार होते हुए भी (चापलूसी वश) सुल्तान को कई गलत कार्य करने से नहीं टोका।[29]

वह अपनी कृति **तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही** के अन्त में फ़िरोज तुग़लक को फ़रिश्ते (देवदूत) जैसा बताता है और उसके दरबार को अल्लाह के दरबार के समान ठहराता है।[30] यहाँ प्रो0 निज़ामी की यह टिप्पणी प्रासंगिक है कि बरनी ने फ़िरोज़ तुग़लक का वर्णन एक 'बेशर्म चापलूस' की भाँति किया है।[31] क्या ऐसे चापलूस लेखक को विश्वसनीय माना जाना चाहिए? क्या लोभ और अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए रचित उसकी कृति **तारीख़-ए-फ़िरोजशाही**, जो वास्तव में फ़िरोज तुग़लक के शासन काल के केवल आरम्भिक 6-7 वर्षो का ही इतिहास देती है और फ़िरोज़ की तारीख़ (इतिहास) की पूरी जानकारी नहीं देने के कारण तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही कहलाने योग्य नहीं है, को समकालीन इतिहास के लिए प्रमाणिक माना जा सकता है? इसके अतिरिक्त जिस समय बरनी ने अपनी इस कृति की रचना की, उस समय वह 72-73 वर्ष का वृद्ध था। उसने अपने जन्म (1315-16) से लगभग 50 वर्ष पूर्व की जिन घटनाओं का उल्लेख किया है वह केवल उसकी स्मृति का वह अंश थीं, जो उसने अपने दादा, परदादा से सुनी थीं। 72-73 वर्ष की आयु में जब उसने उन सुनी-सुनाई बातों को लिखा तब वह बातें लगभग 125 वर्ष पुरानी हो चुकी थीं और उनको लिखते समय उन घटनाओं का कोई साक्ष्य भी बरनी को उपलब्ध नहीं था।[32] क्या बरनी के जन्म से 50 वर्ष पूर्व घटित घटनाओं, जिनका कोई लिखित विवरण उपलब्ध नहीं था और जिनका उल्लेख बरनी ने अपनी धुंधली_सी स्मृति के आधार पर किया है, उनके लिए बरनी को विश्वसनीय माना जा सकता है? यह प्रश्न

उनके लिए है, जो बरनी के जन्म से 50 वर्ष पूर्व की घटनाओं के उल्लेख के लिए बरनी को विश्वसनीय मान लेते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सल्तनतकालीन भारतीय इतिहास के अनेक समकालीन इतिहास लेखकों की कृतियों में उनके आत्मनिष्ठ एवं अभिलाशाजन्य तत्व निहित हैं। उन्होंने कहीं तो समकालीन शासकों-प्रशासकों के मुँह से अपनी अभिलाषाओं को कहलाया है, कहीं अपनी इच्छा और निष्ठानुसार उनकी छवि बनाने का प्रयास किया है। कहीं उन्होंने उन समकालीन शासकों की नीतियों, कार्यो तथा व्यक्तित्व की इसलिए आलोचना की है, क्योंकि वह लेखक उन शासकों के प्रति व्यक्तिगत प्रतिशोध की भावना रखते थे। आर्थिक कारकों ने भी एक सीमा तक उनके लेखन को प्रभावित किया। फ़िरदौसी एंव महमूद ग़ज़नवी के बीच ''शाहनामा'' के लेखन के सम्बन्ध में पारिश्रमिक के लेन देन की सौदेबाज़ी, अमीर खुसरो द्वारा समकालीन शासकों से अधिकाधिक पारिश्रमिक प्राप्त करने की इच्छा और प्रयास, बरनी द्वारा आर्थिक लाभ न मिलने का विलाप। इन लेखकों की धन प्राप्ति की कामना को दर्शाते हैं। सल्तनतकाल के अधिकांश लेखक तो उलेमावर्ग (धर्माचार्यों) का प्रतिनिधित्व करते थे। वह प्रत्येक घटना को धर्म की दृष्टि से देखते थे और उसे शरियत की तराजू पर तौलते थे। उनके इतिहास लेखन पर उनकी धर्मभीरूता का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। अत: इतिहास के प्रत्येक सजग अध्येता को इन समकालीन इतिहास लेखकों की मनोवैज्ञानिक दशा को ध्यान में रखते हुए ही उनके द्वारा दिये गये विवरणों और उनके वक्तव्यों की व्याख्या करनी चाहिए। वास्तव में इतिहास लेखन के लिए इतिहासकार के सम्मुख सिद्धान्त होना चाहिए न कि परिकल्पना।

सन्दर्भ

1.श्रीवास्तव, हरिशंकर, मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन, पृ0 5, वाराणसी, 1997.

2.अस्करी, एस.एच., पटना यूनीवर्सिटी जर्नल, आर्टस, वर्ष 18, अंक 3, पृ077, पटना, 1963.

3.श्रीवास्तव, हरिशंकर, वही, पृ0 5.

4.निज़ामी, के.ए., ऑन हिस्ट्री एण्ड हिस्टोरियन्स ऑफ़ मिडिवल इण्डिया, पृ0 64-65 दिल्ली, 1983 एंव अस्करी, एस. एच., वही, पृ0 78-79.

5. मुखिया, हरवंश, लेख ''मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण,'' इतिहास की पुनर्व्याख्या, पृ0 107, 111, दिल्ली, 1996, एक स्थान पर अमीर खुसरो लिखता है कि बादशाह के मुकुट का प्रत्येक मोती ग़रीब किसान के परिश्रम से थकी हुई आखों के आंसुओं की बूंद है। देखिए, अशरफ़, के.एम., लाइफ़ एण्ड कन्डीशन ऑफ़ द प्यूपिल ऑफ़ हिन्दुस्तान, पृ0 94, टिप्पणी 2.

6.लेखक ने स्वंय कई सैनिक अभियानों में भाग लिया था। देखिए, रैवर्टी, एच.जी. ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद, पृ0 352, टिप्पणी 3, बिब. इडि., कलकत्ता, 1873.

7.श्रीवास्तव, हरिशंकर, वही, पृ0 32.

8.मुखिया, हरबंस, हिस्टोरियोग्राँफ़ी ड्यूरिंग द रेन ऑफ़ अकबर, पृ0 16-17, श्रीवास्तव द्वारा उद्वृत, वही, पृ0 38, सन्दर्भ संख्या 83 एवं रैवर्टी, वही, पृ0 465-68, 597.

9.रिज़वी, एस.ए.ए., आदि तुर्ककालीन भारत, पृ0 33, अलीगढ़, 1956 एंव रैवर्टी, वही, पृ0 637-38.

10. रिज़वी एस. ए. ए., वही, पृ0 55 एंव रैवर्टी, वही, पृ0 715-16, श्रीवास्तव, वही पृ0 27.

11.अस्करी, एस. एच., अमीर खुसरो ऐज़ ए हिस्टोरियन, पृ0 25, श्री वास्तव, वही, पृ0 62, 140, श्यामसुन्दर दास खुसरो को हिन्दी का आदि कवि मानते हैं, देखिए, हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ0 87.

12.संदर्भित काव्य मिफ़्ताह-उल-फ़ुतूह था, जो खसरो ने समकालीन सुल्तान जलालउद्दीन खिल्जी की सैनिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में लिखा था।

13.श्रीवास्तव, हरिशंकर, वही, पृ0 69.

14.हबीब, मौहम्मद, लेख ''दिल्ली के हज़रत अमीर खुसरो'', मध्यकालीन भारत, सम्पादक इरफ़ान हबीब, पृ0 7, अंक 2, दिल्ली, 1982.

15.बरनी लिखता है कि अमीर खुसरो अकसर कहता था कि यदि राजकुमार मुहम्मद (बलबन का बड़ा पुत्र जो मंगोल अभियान में मारा गया था) जीवित होता और बलबन के पश्चात सुल्तान बनता तो वह हम जैसे साहित्यकारों को सोने-चांदी में डुबो देता। देखिए सर सैयद अहमद ख़ाँ द्वारा सम्पादित बरनी की कृति तारीख़े फ़िरोज़शाही का फ़ारसी संस्करण, पृ0 118, बिब. इंडि., कलकत्ता, 1860-62.

16.-17. हबीब, मौहम्मद, वही, पृ0 6.

18. हार्डी, पीटर, हस्टिोरियन्स आँफ़ मिडिवल इंडिया, पृ0 93, लन्दन, 1960.

19. एसामी, फ़ुतुहस्सलातीन, अंग्रज़ी अनुवाद, आगा़ मेहदीहसन, भाग 3, पृ0 677-78, न्यूयार्क

20. श्रीवास्तव, हरिशंकर, वही, पृ0 83, ग्रन्थ के नामकरण के लिए देखिए, तुग़लक डायनेस्टी, आगा़ मेहदीहसन, पृ0298.

21. एसामी लिखता है कि यह दुष्ट तथा अत्याचारी सुल्तान (मौहम्मद बिन तुग़लक)संसार भर में अत्याचार तथा अकाल उत्पन्न कर रहा है। यदि इस देश के सब लोग संगठित हो जायें और एक साथ विद्रोह कर दें, तो इस अत्याचारी सुल्तान को हटा देंगे और मार डालेंगे, देखिए, ग्रन्थ का अनुवाद, वही, पृ0 658-59.

22. शैख, अब्दुर्रशीद, ज़ियाउद्दीन बरनी, पृ0 14, अलीगढ़, 1957 एंव श्रीवास्तव, वही पृ0 100.

23.-24. श्रीवास्तव, हरिशंकर, वही, पृ0 106, 107.

25. मुखिया, हरबंस, वही, इतिहास की पुनर्व्याख्या, पृ0 114.

26-27. बरनी, वही, फ़ारसी संस्करण, पृ0 14 एंव शैख अब्दुर्रशीद, वही, पृ015-16.

28. बरनी, वही, फ़ारसी संस्करण, पृ0 125.

29-30. बरनी, वही, फ़ारसी संस्करण, पृ0 465-67, 578.

31. निज़ामी, के. ए., आँन हिस्ट्री एण्ड हिस्टोरियन्स आँफ़ मिडिवल इंडिया, पृ0139-40.

32. अफ़ीफ़, तारीख़ें फ़िरोज़शाही, पृ0 177 एंव रिज़वी, एस. ए. ए., तुग़लककालीन भारत, भाग 2, पृ0 88-89.